प्रफुल्ल कोलख्यान

दगा की,
इस सभ्यता ने दगा की

अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन पर 11 सितंबर 2001 को हुए आतंकवादी हमले के बाद लिखा गया और जनसत्ता में प्रकाशित हुआ

अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन पर 11 सितंबर 2001 को हुए आतंकवादी हमले और अमेरिकी प्रत्याक्रमण एवं युद्ध की घोषणा में अंतर्निहित पाठ को पूरी दुनिया अपने-अपने ढंग से गढ़ने और पढ़ने में लगी हुई है। कोई इसे अमेरीकी समाज शास्त्री हट्टिंगटन के "सभ्यताओं का संघर्ष" के आलोक में गढ़ने और पढ़ने की कोशिश कर रहा है तो कोई इस में बीज रूप में उपस्थित सभ्यता के विकास की भविष्यलिपि के बर्बर संकेत को समझने का प्रयास कर रहा है। इस घटना को बुश समेत सभी समझदार लोग ऐतिहासिक घटनाओं की उस श्रेणी में रखे जाने का आग्रह कर रहे हैं जिस श्रेणी में "के पहले" और "के बाद" के रूप में इतिहास को विभाजित करनेवाली महत्त्वपूर्ण घटनाओं को रखा जाता है। निश्चित रूप से इस अर्थ में यह एक बड़ी घटना है कि इसने तकनीक और नीति के बल पर पूरी दुनिया को अपनी तर्जनी के इशारे पर चलाने और अपनी भ्रुकुटिविलास के अनुरूप नचाने के स्वप्न में फँसे सबसे समृद्ध राज्य-शक्ति की सुरक्षा घेरेबंदी के दावों को खोखला साबित कर दिया। इस घटना ने शक्तिसंपन्नता और समृद्धि के बल पर सुरक्षा को सुनिश्चित मानकर चलनेवाले प्रभुत्व संपन्न अमेरीकी नागरिकों में आत्मालोचन की लगभग मृत हो चुकी संज्ञाशून्य संवेदना के तार को न सिर्फ कस दिया है, बल्कि उसकी झनझनाहट से निकलनेवाला शोकधुन आभासी ही नहीं , एक सचाई के रूप में भी मनुष्यमात्र की एकता और दर्द के रिश्ता का तरल ही सही पर एक आधार जरूर विनिर्मित कर रहा है। यह घटना चिर दिन तक अमेरीकी मन में अमिट प्रभाव उकेरनेवाले दु:स्वप्न की तरह विराजमान रहेगा। इतिहास के, उनके ही लोगों के द्वारा कथित रूप से खत्म हो चुके ग्रंथ में यह घटना दु:समाप्य अध्याय के रूप में बनी रहेगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि मृत्युंजयी बनने के स्वप्न में मशगूल अमेरीकी नागरिकों का एक बड़ा तबका अपनी चेतना के सुरक्षित आकाश में मृत्यु-भय के इस प्रकार से किये गये घुस-पैठ को सहज ही निष्प्रभावी बनाकर अपनी परिचित दिनचर्या में बहुत आसानी से वापस नहीं लौट पायेगा। इस घटना को अगर किसी अन्य विकासशील देश में घटित होने की कल्पना कर हम इसके महत्त्व को आँकने की कोशिश करें तो यह घटना उतनी ही बड़ी नहीं रह जाती है जितनी बड़ी यह अमेरीकी प्रसंग के कारण बनती है। इसका कारण शायद यह है कि जो सुरक्षा कवच जितना अधिक मजबूत होने का दावा करता है उसके अतिक्रमित होने पर उतना ही बड़ा छेद भी बनता है। इसे साधारण आदमी के पिटने और तथाकथित बड़े आदमी के पिटने के अंतर से भी समझा जा सकता है। इस घटना से यह भी पठितव्य है कि वस्तुत: तंत्र की चुस्ती से सुरक्षा उतनी सुनिश्चित नहीं होती है जितनी मानवीय संबंधों के सहिष्णु और समायोजी प्रवृत्ति के संपोषण से सुनिश्चत होती या हो सकती है।

अमेरीका बता रहा है कि तालिबाँ का यह हमला पूरी मानव सभ्यता पर है। उसके हिसाब से बात सही भी है। बोध के स्तर पर जिसकी सभ्यता वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन तक ही सीमित और उसी में केंद्रित हो उसके लिए तो यह निश्चित रूप से पूरी सभ्यता पर ही आक्रमण है। इसी सभ्यता की रक्षा के लिए आज अमेरीका ने युद्ध की घोषणा की है और युद्ध कर रहा है। वह चाहता है कि पूरी दुनिया उसका साथ दे। सैनिक मिजाज और नागरिक मन में बुनियादी अंतर होता है। लेकिन चूँकि सैनिक भी मूलत: नागरिक समाज का ही अंग हुआ करता है इसलिए नागरिक समाज के गुण-दोष उसके चरित के भी मूल गुण-दोष होते हैं। सिर्फ योद्धा ही युद्ध नहीं करते हैं। चाहे-अनचाहे ढंग से पूरी नागरिक व्यवस्था भी युद्ध में शामिल रहती है। बल्कि, युद्ध का उन्माद तो नागरिक को ही अधिक मजबूती से अपनी गिरफ्त में लेता है, कभी राष्ट्रवाद के नाम पर, कभी नस्लवाद के नाम पर तो कभी धर्मवाद के नाम पर। युद्ध के दौरान चरम बलिदान अवश्यंभावी होता है। आत्मकेंद्रित उपभोक्तावादी मन में इस चरम बलिदान का भाव नहीं के बराबर होता है। उपभोक्ता और चाहे जो हो युद्ध नहीं कर सकता। उसे तो साधारण नागरिक आंदोलन का ताप भी बर्दाश्त नहीं होता है! वह युद्ध क्या करेगा? आगरा शिखरवार्ता के दौरान पाकिस्तान के सैनिक प्रमुख से राज्य-प्रमुख बने परवेज मुशर्रफ ने अपनी कूटनीति के अंतर्गत ही सही लेकिन एक पते की बात कही थी कि सैनिक होने के कारण युद्ध के दर्द को वे किसी भी असैनिक शासक से अधिक तीव्रतापूर्वक महसूस कर सकते हैं। दर्द की यह तीव्रता निम्नपदानुक्रम में अधिक गहन होती जाती है।

सभ्यता और संस्कृति में आनेवाले बदलाव के साथ जीवन की शैली में भी बदलाव आता है। यह बदलाव बाहरी भी होता है और आंतरिक भी। इस बदलाव को व्यवहार में लाये जानेवाले उपकरणों में भी देखा जा सकता है और उपकरणों के इस्तेमाल में सक्रिय मन की आंतरिक संरचना की मूल्य-निर्णय प्रक्रिया में भी लक्षित किया जा सकता है। समुदाय के जीवन को अधिक सुरक्षित, सहज, मनोरम, आसान और प्रीतिकर बनाने के नाम पर बहुस्तरीय संघर्ष चला करता है। इस बहुस्तरीय संघर्ष का विस्तृत ,जटिल , व्यापक और विध्वंसकारी रूप युद्ध में प्रकट होता है। संघर्ष की एकीकृत एवं एकाग्री प्रक्रिया भी युद्ध में परिघटित होती है। जब युद्ध होता है तब सिर्फ युद्ध होता है। अन्य सारे प्रयास स्थगित रहते या हो जाते हैं। इसलिए तो हम किसी भी प्रकार की आपदा के समय राहत कार्य भी युद्ध स्तर पर करने के प्रयास की अपेक्षा करते हैं। महाकाव्यों को मानव संस्कृति के विकास का भावात्मक इतिहास कहा जा सकता है। इन महाकाव्यों का उत्स कोई-न-कोई युद्ध होता है। प्रत्येक महाकाव्य के संदेश में यह भाव भी जरूर अंतर्भुक्त रहा करता है कि युद्ध कोई काम्य स्थिति नहीं है और इसके कारण सभ्यता के सुरक्षावलय के प्राणतंत्र में संपीड़क रसौली बन जाती है। संस्कृति के सामाजिक विन्यास में नकारात्मक अभिप्रेरक तत्त्व के गुणसूत्र विकसित हो जाते हैं। महाकाव्य का महाकाव्यत्व युद्ध के वर्णन में न होकर उसके वर्जन एवं इस रसौली की पीड़ा के निविड़ पाठ और गुणसूत्रों की जटिलता के उलझावों-सुलझावों के चारित्रिक प्रयास की संवेदनात्मक प्रस्तुति के शांतिकामी आयोजन में निहित रहता है।

सभ्यता और संस्कृति में बदलाव के साथ-साथ जीवन स्थिति, वस्तु और मूल्य तथा उसे बरतनेवाली बुद्धि एवं मनोवेग समेत उसके सारे उपकरणों और औजारों में भी परिवर्त्तन आया करता है। मानव संस्कृति अभी इतनी विकसित नहीं हो पाई है कि वह युद्ध का कोई कारगर विकल्प ढूढ़ निकालने में सक्षम हो जाये। बदली हुई परिस्थिति में घातक युद्ध के बदले शोषक युद्ध इसके रूप का विकल्प भले दे युद्ध के तत्त्व का विकल्प नहीं देता है। शोषक युद्ध के घातक युद्ध में बदल जाने का खतरा बराबर बना ही रहता है। दुनिया के तथाकथित रूप से एकध्रुवीय होते जाने के खतरों की आशंका के बीच एक संभावना यह भी पढ़ी जा रही थी कि अब दुनिया से घातक युद्ध का खतरा समाप्त हो जायेगा। अब दुनिया से इस घातक युद्ध के समाप्त हो जाने की वह संभावना भी समाप्त हो गई प्रतीत होती है। आंतरिक विषमता से ग्रस्त और विभाजित संप्रभुत्वहीन राज्यों के अपने ही नागरिकों के प्रति भेदभावमूलक रवैये के कारण विश्व-गृहयुद्ध का खतरा भी बढ़ गया है। ओसामा बिन लादेन और उसके अमेरिकी आका ने मिलकर यह एहसास करा दिया कि दुनिया अभी उतनी सभ्य हुई नहीं है जितनी सभ्य होने का दावा विभिन्न अवसरों पर विभिन्न तरीकों से वह करती रही है।

विषमतामूलक समाज की प्रतिमुखी अतियों के चरमावस्था के असह्य तनाव के गर्भ से युयुत्सा का जन्म होता है। सभ्य समाज में अब युद्ध और युद्ध जैसी स्थिति के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए, यह एक आदर्श कामना भर है। स्वीकार करने में परहेज नहीं होना चाहिए कि इस कामना को जमीनी सचाई के रूप में या वर्तमान मानवीय सभ्यता के चरित के रूप में हासिल कर लेने जितनी सभ्य हमारी सभ्यता अभी हो नहीं पाई है। प्रपंच से मुक्त हुए बिना, मुक्त मन से मनुष्य मात्र की गरिमा और संभाव्य समानता के प्रति नि:शर्त आदर-भाव को युक्तिसंगत सम्मान प्रदान करने के सातत्य को बनाये रखे बिना,अतियों से मुक्ति संभव ही नहीं हो सकती है। और जब अतियाँ रहेंगी तो उनकी प्रतिमुखता भी रहेगी और जब-तब इस प्रतिमुखता की चरमावस्था भी प्रकट होती रहेगी।अति से मुक्ति के लिए जिस उच्चतर संस्कृति का विकास अपेक्षित होता है उस संस्कृति की विनिर्मिति के लिए सिर्फ भौतिक संसाधनों की प्रचुरता पर्याप्त नहीं होती है। अतृप्ति को बढ़ानेवाली क्रूर एवं नि:सत्वकारी उपभोग की जगह संतोष संपोषित सत्व-संरक्षिका भोगवृत्ति में सहज रूप से विन्यस्त नैतिक संदर्भों की नम्यता और तारतम्यता ही इस उच्चतर संस्कृति की विधायिका बन सकती है। सभ्यता और संस्कृति के आत्मघात की किसी भी दु:स्थिति से बचने के लिए इस बात को समझ लेना परम आवश्यक है कि आयुध की जिस प्रलयंकारी क्षमता से वर्तमान सभ्यता के राजनीतिक अभिभावक संपन्न हैं उस क्षमता को धारण करने का धैर्य उन के पास नहीं है । विषमता पोषक इस खरोष्ट्री सभ्यता के दो सबसे बड़े खतरे हैं, ओछा मन और तीखा हथियार। मन के ओछेपन को तत्काल खत्म या कम करना आसान नहीं है। यह भी कि जब तक मन का ओछापन बचा हुआ है तब तक हथियार का तीखापन भी कम नहीं हो सकता। यह इस सभ्यता के संकट का दुष्चक्र है। किसी भी दुष्चक्र से निकलने का एक मात्र रास्ता यही होता है कि दुष्चक्र के सभी संघटक तत्वों पर एक साथ काबू पाने का प्रयास किया जाये।

अकेले राजनीतिक अभिभावकों के भरोसे इतने संवेदनशील सवाल और सांस्कृतिक पुनर्निमाण के काम को छोड़ा नहीं जा सकता है। वैसे भी राजनीतिक सचेतनता एक सीमा के बाद के परिदृश्य के महत्त्व को आँक नहीं पाती है। शायद यह राजनीति का काम भी नहीं है। राजनीति उस में हाथ अवश्य बँटा सकती है। राज्य-सत्ता के नाभिकीय संकाय से बाहर, ज्ञान तथा संवेदना की जिस सत्ता के संदर्भ में मनुष्य मात्र की एकता के लिए जगह बन सकती है उससे जुड़े लोगों को ही अपने हाथ में यह दायित्व लेना होगा। यह काम इतना आसान नहीं है। जिस प्रकार धर्म-सत्ता की कूपमंडूकता से मनुष्य को बाहर निकालने के लिए चर्च के वर्चस्व को चुनौती देते हुए सफल सेकुलर आंदोलन हुआ था उसी प्रकार आज राज्य-सत्ता के स्वार्थ-समुच्चय के कुत्सित व्यूह से मनुष्य को बाहर

निकालने के लिए एक जबर्दस्त विश्व मानव आंदोलन की जरूरत को समझना होगा। सेकुलर आंदोलन की सफलता के कारण धर्म जीवन से बहिष्कृत नहीं हो गया बल्कि मानवीय जरूरत के संदर्भ में अपनी भूमिका की सीमाओं के अंदर बने रहकर भौतिक विकास के वैज्ञानिक पथ में बाधा बनने की प्रवृत्ति से मुक्त होता गया है। यह अकारण नहीं है कि जिस समाज में अपने धर्म के अतिरेकी वर्चस्व से बाहर निकलने का जितना कम प्रयास हुआ वह समाज उतना ही आत्म-विमूढ़, कट्टर और अनैतिक भी बना हुआ है। जीवन-मूल्य के रूप में धर्म जिन आधार तत्त्वों की पैरवी करता है और वैज्ञानिक विकास जिन जीवन-स्थितियों की बहाली करता है या करने की कोशिश करता है उनके मूल चरित्र के अंतर्विरोध को समझना होगा। जीवन-स्थितियों की सापेक्षता में ही जीवन-मूल्य टिके या प्रासंगिक बने रह सकते हैं। जीवन-स्थिति से विच्छिन्न मूल्य को ढोया तो जा सकता है,उससे अनुप्राणित या अनुप्रेरित नहीं हुआ जा सकता है। विश्व मानव आंदोलन की भूमिका राज्य-सत्ता को जीवन से बेदखल करने में नहीं, बल्कि मानवीय जरूरत के संदर्भ में राज्य-सत्ता की भूमिका को वर्चस्वादी आकांक्षाओं से विरत और उसे व्यवस्थापन की सीमाओं के अंदर कायम रखकर मनुष्य मात्र की नवनैतिकता के विकास के बहुल-विवेकी एवं वैविध्य-संपोषित सांस्कृतिक पथ के संधान में आगे बढ़ने की ही हो सकती है। जनतंत्र का वास्तविक प्रतिफलन जीवन में हो, उसके अमृत-तत्त्व का लाभ निचली कतार तक पहुँच सके, वह सिर्फ मुट्ठी भर राजनीतिकों तक ही सीमित न रह जाये इसके लिए जरूरी है विश्व मानव आंदोलन। तालिबाँ की सैन्य शक्ति हो या राज्य-सत्ता की सैन्य शक्ति ये दोनों अपने मूल चरित्र में एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सिक्कों के खेल में एक पहलू दूसरे पहलू के अस्तित्व को आधार प्रदान करता है। ऐसा हो नहीं सकता कि एक पहलू तो रहे लेकिन दूसरा पहलू नहीं रहे। इन दोनों ही पहलुओं के तनाव का शिकार बनता है निरपराध आम आदमी। इस निरपराध आम आदमी का एक छोटा-सा लाचार किस्म का अपराध यह अवश्य होता है कि वह समय रहते अपना मुँह खोल नहीं पाता है। विडंबना यह कि जब-जब यह निरपराध आम आदमी मारा जाता है तब-तब तथाकथित खास आदमी की सुरक्षा कड़ी कर दी जाती है । जिस सभ्यता में राजा को किला बनाकर अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने की छूट हासिल होती है, वह सभ्यता एक दगाबाज सभ्यता ही हो सकती है। विश्व मानव आंदोलन की भूमिका मनुष्य मात्र के इस दगाबाज सभ्यता के दुष्चक्र से बाहर निकलने और नई मानव संस्कृति की पीठिका तैयार करने में तलाशी जा सकती है।